हिन्दी काव्य के विकास में जैन श्रमणियों का योगदान

• कन्हैयालाल गौड़

साहित्य मनीषियों ने आत्म तथा अनात्म भावनाओं की भव्य-अभिव्यक्ति को साहित्य की संज्ञा दी है। यह साहित्य किसी देश, समाज अथवा व्यक्ति का सामयिक समर्थक नहीं, वरन् सार्वदेशिक और सार्वकालिक नियमों से प्रभावित होता है। मानव मात्र की इच्छाएँ, विचार धाराएँ और कामनाएँ साहित्य की स्थायी सम्पत्ति है। साहित्य में साधना और आनुभूति के समन्वय से समाज और जगत् से ऊपर सत्य और सौन्दर्य का चिरन्तन रूप पाया जाता है।

हिन्दी की जैन श्रमणियों ने अपनी रचनाओं में आत्मभाव सत्यता के साथ अभिव्यक्त किया है। जैन श्रमणियों ने आध्यात्मिक अनुभूति की सच्चाई को अन्योक्ति और समासोक्ति में बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है। इन श्रमणियों की आध्यात्मिक भावना में हृदय को समतल पर लाकर भावों का सार समन्वय उपस्थित किया है। जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण को दार्शनिक दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करने में मानव भावनाओं का गहन विश्लेषण किया गया है।

हिन्दी की जैन श्रमणियों ने समय-समय पर हिन्दी में कविता का निर्माण कर हिन्दी काव्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन जैन श्रमणियों का रचना काल १४ वी-शती से लेकर २०वीं २१वीं शती तक रहा है जिनका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

१. गुणसमृद्धि महत्तरा - यह महत्तरा खतरगच्छीय जिनचन्द्र सूरि की शिष्या थी। इन के द्वारा रचित प्राकृत भाषा में ५०२ श्लोकों में निबद्ध अंजणा सुन्दरी चरियं ग्रन्थ वर्तमान में भी जैसलमेर के भंडार में विद्यमान है। इसमें हनुमान जी की माता अंजना सुन्दरी का चरित्र वर्णित है। इस रचना की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसकी रचना वि.सं. १४७७ में चैत्र सुदी त्रयोदशीं के दिन जैसेलमेर में की गई -

सिरि जैसलमेर पुरे विक्कमच उदसहसतुत्तरे वरिसे।
वीर जिण जन्म दिव से कियमंजणि सुन्दरी चरियं ॥४९२॥ [१]

२. सिरिमा महत्तरा - आपश्री जिनपति सूरि की आज्ञानुवर्ती साध्वी थीं। इन्होंने २० गाथाओं की एक रचना जिनपति सूरि बधामणा गीता सं. १२३३ के आस पास लिखा। इसमें सं. १२३२ की एक घटना का उल्लेख है "आसी नयरि बघावणड आयउ जिणपित सूरि"

जिन चंद सूरि सीसु आश्या लो वधावणउ बजावि-।
सुगुरु जिणपति सूरि आविया लो आंकणी-।

---

१ - मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ (व्यावर) पृ. ३०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिया गोबरि गोहलिया मोतीय चउकु परेहु।
हाले महत्तरो इम भणइ संघह मनोरह पूरि।

इसकी भाषा ठेठ ग्राम प्रचलित लोक गीतों की भाषा है। एक नारी द्वारा प्रयुक्त यह भाषा तत्कालीन मरुगुर्जर का बड़ा प्राकृतिक स्वरूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है।[२]

३. राजलक्ष्मी - यह तप गच्छीय शिवचूला महत्तरा की शिष्या थी। आपने सं. १५०० के आसपास शिवचूला गणिनी विज्ञप्ति (गाथा २०) की रचना की है। पोरवाड़ वंशीय गेहा की पत्नी विल्हणदे की कुक्षि से जिनकीर्ति सूरि और राजलक्ष्मी पैदा हुए थे। सं. १४९३ में देवलवाड़े (मेवाड) में शिवचूला साध्वी को महत्तरा पद प्रदान किया गया था। उसी समय रत्नशेखर को वाचक पद प्रदान किया गया था। इस अवसर पर महादेव संघवी ने बड़ा उत्सव किया था। यह पद महत्तरा पद प्रदानोत्सव के अवसर पर लिखा गया है।

द्रुपदि तारा मृगावतीए, सीताय मन्दोदरी सरसती ए।
सीलसती सानिध करे इए, भणवाथी-श्री संघ दुरिया हरइ।

इसमें गणिनी शिवचूला का चरित चर्चित है। भाषा सरल एवं काव्यत्व सामान्य कोटि का है।[३]

४. पद्मश्री - आपने सं. १५४० में चारुदत्त चरित्र नामक चरित्र काव्य लिखा है। इसके मंगला चरण में सरस्वती की वन्दना की गई है -

देवि सरसति देव सरसति अति वाणि
आपु मनि आनन्द करि धरिय भाव भासुर चित्तिहिं।
पय पंकज पणमूं सदा, मयहरणी भोलीय भत्ति हिं।
चारु दत्त कम्मह चरी, पभणिसु तुम्ह पसाय,
भाविया भाविहिं सांभलु, परहरि परहु पमाय।

इसमें प्रायः चौदह छन्द का प्रयोग हुआ है। इसका अन्तिम छन्द इस प्रकार है -

भणइ भणावइ भासुर भत्ति, अथवा जेउ सुणइ निजचित्ति,
तेह धरि नव निधि हुइ निरमली, भणइ पदमशीय वंछित फली।

सामान्यतया जिस प्रकार अन्य जैन काव्यों का अन्त होता है उसी प्रकार इसमें भी अंततः चारुदत्त संयम धारण करके उत्तम चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करता है और स्वयं उच्चलोक को प्राप्त करता है।[४]

५- विनयचूला गणिनी - यह साध्वी आगमगच्छीय हेमरत्नसूरि के समुदाय की है। इन्होंने सं. १५१३ के आसपास श्री हेमरत्न सूरि-गुरुफागु नाम की ११ पद्यों में रचना बनाई है। इसमें अमरसिंह सूरि के पट्ट घर हेमरत्न सूरि का परिचय दिया गया है। इस रचना के अनुसार हेमरत्न सूरि खेवसी वंशीय

२ - हिन्दी जैन साहित्य का वृहद इतिहास ले. अ. शितिकंठ मिश्र पृ. १४५
३ - वही - पृ. २७४ - २७५
४ वही - पृ. ४२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीमग के पुत्र थे। इन की माता का नाम रांमली था। उन्होंने वाल्यावस्था में ही विरक्त होकर अमरसिंह सूरि से दीक्षा ग्रहण की और बाद में आचार्य बनी। इनकी रचना का प्रारम्भिक पद्य इस प्रकार हैं -

अहे जुहारिस जगत्रय अधिपति, मनुपति सुमति जिणंद,
अहे गायसुं रंगि धनागम, आगम गच्छ मुणिंद।
श्री हेमरत्न सूरि भगतिहिं, विगतिहिं गुण वर्णवे सु,
गुरु पद पंकज सेविय, जाविय सफल करे सु।

अन्तिम छन्द देखिए -

इणिपरि सुह गुरु सेवउ, केवउ नहीं भववासि,
दुर्लभ नरभव लाघउ, साधउ सिद्धि उल्हास।

रचना काव्य की दृष्टि से सामान्य कोटि की है। [५]

६. हेमश्री - ये साध्वी बड़तप गच्छ के नयनसुन्दर जी. की शिष्या थीना जैन गुर्जर कविंओ भाग-१ के पृष्ठ-२८६ पर इनकी एक रचना कनकावती आख्यान का उल्लेख मिलता है यह ३६७ छन्दों की रचना है। इसका निर्माण सम्वत् १६४४ वैशाख सुदी ७ मंगलवार को किया गया। रचना इस प्रकार है -

सरसति सरस सकोमल वांणी-रे, सेवक उपरि बहु हीत आंणी रे।
श्री जिनचरण सीसज नामी-रे, सहि गुरु केरी सेवा पांमी रे।
सेवा पांमी सीस नांमी, गाउं मनह उलट घणई।
कथा सरस प्रबन्ध भण सूं, सुजन मनई आंणंदनी।

७. हेमसिद्धि - इनका सम्बन्ध खतर गच्छ से था। इन के दो गीतों में पहली रचना है -लावण्य सिद्धि पहुवणी गीतम्। इस रनचा में साध्वी लावण्य सिद्धि का परिचय दिया गयां है। रनचा के अनुसार लावण्य सिद्धि वीकराजशाह की पत्नी गुजरदे की ये सुपुत्री थी। पहुतणीरत्र सिद्धि की ये पट्टधर थी। जिन चन्द्र सूरि जी के आदेश से ये वीकानेर आई और वहीं अनशन आराधना की। सम्वत् १६६२ में स्वर्ग सिधारी रचना का आदि अन्त इस प्रकार है -

आदि भाग -

आदि जिणेसर पयनमी, समरी सरसती मात।
गुण गाइसुं गुरुणी तणा, त्रिभुवन मांही विख्यात।

अन्त भाग -

परता पूरण मन केरी, कल्पतरु थी अधिकेरी।
हेमसिद्धि भगति गुण गावइतें सुख सम्पत्ति, नितुपावइ।

---

५ - हिन्दी जैन साहित्य का वृहद इतिहास ले.डा. शितिकंठ मिश्र पृ. ४९५ - ४९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी दूसरी रचना सोमसिद्धि निर्वाण गीतम् है। इसमें १८ पद्य हैं। रचना के अनुसार सोमसिद्धि का प्रारम्भिक नाम संगारी था। ये नाहर गोत्रीय नरपाल की पत्नी सिंगादे की पुत्री थी। वोथरा गोत्रीय जेठा शाह के पुत्र राजसी से इनका विवाह हुआ था। १८ वर्ष की आयु में इन्होंने दीक्षा ली। ये लावण्यसिद्धि के पद पर प्रतिष्ठित हुईं। इनके बाद कवयित्री हेमसिद्धि पट्टधर बनी।यह रचना कवित्वपूर्ण है। इसमें कवयित्री का सोमसिद्धि के प्रति गहरा स्नेह और भक्तिभाव प्रकट हुआ है। रचना की पंक्तियाँ देखिये -

मोरा नइ वलि दादुरां बावीहा नइ मेहोरे,
चकवा चिंतवत रहइ, चंदा उपरि नेहो रे॥१६॥
दुखीयां दुख भांजीयइ, तुम्ह बिना अवरन कोइरे।
सह गुरुणी गुण गावीयइ, वांदउ दिन-२ सोई रे ॥१७॥
चन्द्र सूरज उपमा दीजइ (अधिक) आणं दो रे।
पहुतीणी हेमसिद्धि इम भणइ देज्यो परमाणं दो-रे॥१८॥

८. विवेक सिद्धि - ये लावण्यसिद्धि की शिष्या थी। नाहटा जी ने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह के पृ. ४२२ पर उनकी एक रचना विमल सिद्धि गीतम् प्रकाशित की है। इस रचना के अनुसार विमल सिद्धि मुलतान निवासी माल्हू गोत्रीय शाह जयतसी की पत्नी जुगतादे की पुत्री थी। बीकानेर में इनका स्वर्गवास हुआ-। रचना का आदि अंत इस प्रकार है -

आदि भाग -

गुरुणी गुणवन्त नमीजइ रे, जिस सुख सम्पत्ति पामीजइरे।
दुख दोहग दूरि गयी जइ रे, पर भवि सुरसाथिरमी जइरे।

अन्त भाग -

विमल सिद्धि, गुरुणी, महीयइ रे, जसु नामइ वांछित लहीयइ रे।
दिन प्रति पूजइ नर नारी रे, विवेक सिद्धि सुखकारी रे।

९. विद्यासिद्धि - ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह के पृष्ठ २१४ पर इनकी एक रचना गुरुणी गीतम् से प्रकाशित है। प्रारम्भ की पंक्ति न होने से गुरुणी का नाम ज्ञात नहीं हो सका है। बाद की पंक्तियों से सूचित होता है कि ये गुरुणी साउंसुखा गोत्रीय कर्मचन्द की पुत्री थी और जिनसिंह सूरि ने इन्हें पहुतणी पद दिया था। यह रचना संवत् १६९९ भाद्र कृष्णा-२ को रची गई है।

१०. हरकूबाई - इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा से रहा है। आचार्य श्री विनयचन्द ज्ञान भण्डार जयपुर में पुष्ठा सं. १०५ में ८८ वीं रचना महासती श्री अमरुजी का चरित्र इन के द्वारा रचित मिलती है। इसकी रचना संवत् १८२० में किशनगढ़ में की गई। इन्हीं की एक रचना महासती जी चलरु जी सज्झाय नाम से नाहटा जी ने ऐतिहासिक काव्य संग्रह में पृष्ठ संख्या २१४-२१५ पर प्रकाशित की है।

११. हुलसा जी - यह भी स्थानकवासी परम्परा से सम्बन्धित है। आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर में पुष्ठा सं. २१८ में ५० वीं रचना क्षमा व तप ऊपर स्तवन इनकी रचित मिलती है। इसकी रचना संवत् १८८७ में पाली में हुई थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. सरुताबाई - सं. १९०० के लगभग - ये स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्रीमलजी महाराज से संबंधित है। नाहटा जी ने ऐतिहासिक काव्य संग्रह में पृ. १५६-१५८ पर इनकी एक रचना पूज्य श्री मलजी की सज्झाय प्रकाशित की है।

१३. जड़ाव जी - ये स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री रतनचन्द्र जी महाराज के सम्प्रदाय की प्रमुख रंभा जी की शिष्या थी। इनका जन्म संवत् १८९८ में सेठां की रिया में हुआ था। संवत् १९२२ में ये दीक्षित हुई। नेत्र ज्यति क्षीण होने से संवत् १९७२ तक ये जयपुर में ही स्थिरवासी बन कर रहीं। इनकी रचनाओं का एक संकलन जैन स्तवनावली नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें इनकी स्तवनात्मक, कथात्मक, उपदेशात्मक और तात्विक रचनाएँ संग्रहित हैं। रुपक लिखने में उन्हें विशेष सफलता मिली है। एक उदाहरण देखिए -

ज्ञान का घोड़ा चित की चाबुक, विनय लगाम लगाई।
तप तरवार भाव का भाला, रिवम्मा ढाल बंधाई।
सत संजम, का दिया मोरचा, किरिया तोप चढ़ाई।
सझाय पंच का दारू सीसा, तोपा दीवी चलाई।
राम नाम का रथ सिणगारया दान दया की फौजा।
हरख भाव से हाथी हौदे, बैठा पावों मौजा।
साच सिपाही पायक पाला, संवर का रखवाला।
धर्म राय का हुक्म हुआ जब फौजा आगी चाला।

१४. आर्या पार्वताजी - इनका सम्बन्ध स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज की सम्प्रदाय से है। इनका जन्म आगरे के निकट खेड़ा भांड पुरी गाँव में चौहान राजपूत बलदेव सिंह की पत्नी धनवती की कुक्षि से संवत् १९११ में हुआ। जैन मुनि कंवर सेन जी के प्रतिबोध से संवत् १९२४ से इन्होंने साध्वी हीरादेवी के पास दीक्षा ग्रहण की। बाद में ये सती खम्बा जी की शिष्या तप-स्विनी मेलो जी की शिष्या बन गई। पंजाब की साध्वी परम्परा में इनका गौरव पूर्ण स्थान रहा है। इनके द्वारा रचित्र निम्नलिखित चार रचनाओं का उल्लेख है। (१) वृत मण्डली (संवत् १९४०) (२) अजित सेन कुमार ढाल (संवत् १९४०) (३) सुमति चरित्र (संवत् १९६१) (४) अरिदमन चौपाई (संवत् १९६१) इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ बीकानेर में श्री पूज्य जिन चारित्र सूरि जी के संग्रह में है। इनकी कई गद्य कृतियाँ भी प्रकाशित हैं।

१५. भूर सुन्दरी - इनका सम्बन्ध भी स्थानकवासी परम्परा से है। इनका जन्म संवत् १९१४ में नागर के समीप वुसेरी नामक गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम अखयचन्द जी रांका तथा माता का नाम रामाबाई था। अपनी भुआ से प्रेरणा पाकर ११ वर्ष की वय में साध्वी चंपा जी से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। ये कवयित्रि होने के साथ-साथ गद्य लेखिका भी थी। इनके निम्न लिखित ६ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

(१) भूर सुन्दरी जैन भजनों द्धार (संवत् १९८०), (२) भूरसुन्दरी विवेक विलास (संवत् १९८४), (३) भूर सुन्दरी बोध विनोद (सं. १९८४), (४) भूर सुन्दरी अध्यात्म बोध (सं. १९८५), (५) भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश (सं. १९८६) (६) भूर सुन्दरी विद्याविलास (सं. १९८६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी रचनाएँ मुख्यतः स्तवनात्मक और उपदेशात्मक है। इन्होने पहेलियाँ भी लिखी हैं। उदाहरण देखिए -

आदि अखर विन जग को ध्यावे, मध्य अखर बिन जग संहारे।
अन्त अखर बिन लागे मीठा, वह सबके नयनों में दीठा॥

उत्तर = काजल

दाह वह अंत दह रह मध्य अरू मांय।
तुम दरसन बिन होत है, दरसन से जाय।

उत्तर = दर्द

१६ - रत्नकुंवर जी - ये स्थानकवासी परम्परा के पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज के सम्प्रदाय की प्रवर्तिनी रही हैं। संवत् १९९२ में ५१ ढालों में निबद्ध इन की एक रचना श्री रत्नचूड़ मणिचूड़ चारित्र प्रकाशित हुई है।

उक्त श्रमणी कवयित्रियों के अतिरिक्त श्राविका कवयित्रियों में चम्पादेवी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये देहली-निवासी लालासुन्दर लाल टोंग्या की धर्म पत्नी थी। इनके पिता अलीगढ़ निवासी श्री मोहनलाल पाटनी थे। इनका जन्म संवत् १९१३ के आसपास हुआ था। ६६ वर्ष की आयु में ये बीमार पड़ गई। तब अर्हंद भक्ति में तन्मय हो कर इन्होंने कई पद लिखे। जिनका संग्रह "चम्पा शतक" नाम से डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने सम्पादित किया है।

वर्तमान में भी विभिन्न सम्प्रदायों में कई जैन श्रमणियाँ काव्य साधना में लीन है। तेरा पंथ सम्प्रदाय की हिन्दी कवयित्रियों के सम्बन्ध में एक निबन्ध उदयपुर से प्रकाशित होने वाली शोध पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। जिसमें श्रमणी जयश्री, श्रमणी मंजूला, श्रमणी स्नेह कुमारी श्रमणी कमलश्री, श्रमणी रत्नश्री, श्रमणी कानकुमारी, श्रमणी फूलकुमारी श्रमणी कमलश्री, श्रमणी रत्नश्री, श्रमणी कान कुमारी, श्रमणी फूलकुमारी श्रमणी मोहना, श्रमणी कनक प्रभा, श्रमणी यशोधरा, श्रमणी सुमनश्री तथा श्रमणी कनकश्री की काव्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया है।

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि जैन काव्य धारा का प्रतिनिधित्व करने वाली इन श्रमणी कवयित्रियों का हिन्दी कवयित्रियों में एक विशिष्ट स्थान है। इन्होने न तो डिंगल कवयित्रियों की भाँति अंतःपुर में रहकर रानियों के मनोविनोद के लिये काव्य रचना की और न किसी की प्रतिस्पर्धा में ही लेखनी को मोड़ दिया। इन्होंने प्राणिमात्र को अपना जीवन निर्मल, निर्विकार और सदाचार बनाने का उपदेश दिया है। स्वानुभूतियों से निसृत होने के कारण इनके उपदेश सीधे स्वयं को स्पर्श करते हैं।[६]

* * * * *

६ - मुनि द्वय अभिनन्दन ग्रन्थ (व्यावर) पृष्ठ ३०३ से ३०७ तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org